देहली 4

कहीं नहीं से वापसी।

कुछ सफ़र ऐसे होते हैं जो एक प्रस्थान से शुरू होते हैं।

और कुछ, जो एक क्षति से शुरू होते हैं।

यह दूसरी श्रेणी का है।

बहुत समय तक मैं मानता रहा कि वापसी भूगोल का मामला है।

एक जगह छोड़ना।

एक दूरी पार करना।

शुरुआत के बिंदु पर लौट आना।

यह एक सीधी-सी परिभाषा थी।

सुविधाजनक।

और ग़लत भी।

साल गुज़रने के साथ मैंने पाया कि कुछ वापसियाँ किसी दिखाई देने वाली जगह तक नहीं ले जातीं।

क्योंकि जिस जगह पहुँचना है, वह अब है ही नहीं।

या कभी थी ही नहीं।

या हम इतने बदल चुके हैं कि उसे पहचान नहीं सकते।

फिर भी लौटने की ज़रूरत बनी रहती है।

यह इंसान की सबसे गहरी हूकों में से एक है।

हम उस वक़्त में लौटना चाहते हैं जब चीज़ें ज़्यादा सरल लगती थीं।

ज़्यादा साफ़।

ज़्यादा सधी हुई।

हम उन लोगों के पास लौटना चाहते हैं जिन्हें हमने खो दिया।

चूके हुए मौक़ों के पास।

न लिए गए फ़ैसलों के पास।

उन पलों के पास जब ज़िंदगी अभी हर संभावना के लिए खुली लगती थी।

पर समय कुछ नहीं लौटाता।

यह उसका काम नहीं।

समय रूपांतरित करता है।

लौटाता कभी नहीं।

कुछ साल ऐसे रहे जब मैं नामुमकिन वापसियों के पीछे भागा।

मैं यह जाने बिना करता था।

मैं ख़ुद के पिछले रूपों को वापस पाने की कोशिश करता था।

वह नौजवान।

वह पेशेवर।

वह बेटा।

वह आदमी जिसे यक़ीन था कि वह जानता है कि कहाँ जा रहा है।

हर कोशिश का अंत एक जैसा होता था।

एक निराशा के साथ।

क्योंकि वह इंसान अब था ही नहीं।

और यही ठीक था।

एक सुबह मैंने एक बात समझी जिसने अतीत को देखने का मेरा ढंग बदल दिया।

मैं सचमुच पीछे नहीं लौटना चाहता था।

मैं एक एहसास वापस पाना चाहता था।

एक सुरक्षा।

एक अपनापन।

दुनिया का एक ऐसा रूप जिसमें सवाल जवाबों से कम लगते थे।

पर ज़िंदगी समय-यात्राएँ नहीं देती।

वह सिर्फ़ रूपांतरण देती है।

तभी मैंने वापसी को अलग नज़र से देखना शुरू किया।

उस ओर बढ़ने की तरह नहीं, जो मैं रह चुका था।

बल्कि उसके क़रीब जाने की तरह, जो मैं बन चुका था।

फ़र्क़ बहुत बड़ा है।

जब हम पीछे लौटने की कोशिश करते हैं, तो समय से लड़ते हैं।

जब हम आगे बढ़ना स्वीकार करते हैं, तब आख़िरकार उसे समझने लगते हैं।

बहुत से लोग सारी ज़िंदगी एक घर की तलाश में बिता देते हैं।

वे सोचते हैं कि वह एक जगह है।

एक शहर।

एक सड़क।

एक देश।

फिर वह दिन आता है जब वे पाते हैं कि घर आत्मा की एक अवस्था है।

और कोई भूगोल का निर्देशांक उसकी गारंटी नहीं दे सकता।

अपनी ज़िंदगी में मैंने कई देश पार किए हैं।

कई संस्कृतियाँ।

कई भाषाएँ।

हर बार मैं कुछ छोड़ता था।

हर बार कुछ और बटोरता था।

जाने बिना मैं अनुभवों का एक जीता-जागता अभिलेखागार बनता जा रहा था।

अलग-अलग जगहों से बना एक मोज़ेक।

एक मोड़ पर मैंने ख़ुद से यह पूछना छोड़ दिया:

"मैं कहाँ का हूँ?"

और यह पूछना शुरू किया:

"मैं अपने साथ क्या लिए चलता हूँ?"

दूसरा सवाल कहीं ज़्यादा काम का था।

क्योंकि जुड़ाव बदल जाते हैं।

सरहदें बदल जाती हैं।

नक़्शे बदल जाते हैं।

पर जो हम भीतर लिए चलते हैं, वह सफ़र करता रहता है।

मुझे कुछ रातें याद हैं जब दिशाहीनता का एहसास आम दिनों से ज़्यादा गहरा था।

रातें, जब सब कुछ दूर लगता था।

लोग।

जगहें।

यक़ीन।

यहाँ तक कि ख़ुद मैं भी।

उन पलों में सबसे पुराना प्रलोभन उभरता था।

पीछे लौट जाना।

रद्द कर देना।

पहले जैसा कर देना।

किसी पिछले बिंदु से फिर शुरू करना।

पर हर बार हक़ीक़त मुझे वही सच दिखाती थी।

कोई पिछला बिंदु नहीं होता।

सिर्फ़ मौजूदा बिंदु होता है।

और यह चुनाव कि उसका क्या किया जाए।

समय के साथ मैंने अतीत को मंज़िल नहीं, एक पुस्तकालय मानना सीख लिया।

एक जगह जहाँ जाया जाए।

जहाँ बसा न जाए।

क्योंकि जो अतीत में जीता है, वह धीरे-धीरे वर्तमान में बसना छोड़ देता है।

और वर्तमान के बिना भविष्य नहीं होता।

वे लोग जिनसे मैंने प्रेम किया।

वे शहर जिनसे मैं गुज़रा।

वे मौक़े जो मैंने गँवाए।

सफलताएँ।

हारें।

सब कुछ बना हुआ था।

पर एक अलग रूप में।

लिखे जा चुके पन्नों की तरह।

जिन्हें दोबारा पढ़ा जाए।

दोबारा लिखा नहीं।

यह एक मुक्ति थी।

क्योंकि मैंने आख़िरकार वह ढूँढ़ना छोड़ दिया जो वापस नहीं पाया जा सकता था।

और अपनी ऊर्जा उसमें लगानी शुरू की जो अब भी बनाया जा सकता था।

विडंबना यह कि ठीक उसी पल अतीत ने मेरा पीछा करना छोड़ दिया।

जब मैंने उसे मंज़िल की तरह देखना छोड़ दिया।

लोगों के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ।

बहुत से मेरी ज़िंदगी से निकल चुके थे।

कुछ अपनी मर्ज़ी से।

कुछ मजबूरी से।

और कुछ बस समय के अपने काम से।

शुरू में मैं उन ग़ैरमौजूदगियों को क्षति समझता था।

फिर समझा कि कुछ उपस्थितियाँ अलग-अलग रूपों में बनी रहती हैं।

छोड़े गए सबक़ों में।

यादों में।

व्यवहारों में।

उन फ़ैसलों में जो मुझ पर असर डालते रहे।

यह भी एक वापसी थी।

लोगों की नहीं।

उनके अर्थ की।

शायद परिपक्वता ठीक इसी में है।

यह समझना कि कुछ भी अपने मूल रूप में नहीं लौटता।

पर लगभग सब कुछ एक नए रूप में जीता रह सकता है।

आख़िरकार मैंने वापसी का रास्ता ढूँढना छोड़ दिया।

क्योंकि मैंने वह समझ लिया जो किसी नक़्शे ने कभी नहीं दिखाया था।

मैं कहीं से नहीं लौट रहा था।

मैं पहुँच रहा था।

ख़ुद के उस रूप तक पहुँच रहा था जिसे सारे प्रस्थानों, सारी क्षतियों, सारी मुलाक़ातों और सारे रूपांतरणों ने गढ़ा था।

और तभी वह विरोधाभास सुलझ गया।

जिस वापसी को मैंने बरसों ढूँढ़ा था, वह अतीत की ओर नहीं ले जाती थी।

मेरी ओर ले जाती थी।

इसीलिए इस देहली का शीर्षक सटीक है।

इसलिए नहीं कि कोई मंज़िल नहीं थी।

बल्कि इसलिए कि मंज़िल का कोई पता नहीं था।

वह बिना भूगोल की एक जगह थी।

बिना सरहदों की।

बिना निर्देशांकों की।

एक जगह जिससे मैं ज़िंदगी भर गुज़रता रहा, बिना उसे पहचाने।

कहीं नहीं से वापसी।

उस ओर वापसी, जो मैं बन चुका था।